INTERNATIONAL JOURNAL FOR INNOVATIVE RESEARCH IN MULTIDISCIPLNARY FIELD
Research Culture Society & Publication
Monthly Issue Journal
ISSN :-2455-0620

Conference (Oct 2015)

INTERNATIONAL JOURNAL FOR INNOVATIVE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY FIELD

RESEARCH CULTURE SOCIETY AND PUBLICATION

ISSN – 2455 – 0620

National Conference on

"Globalization: Key to Social, Political, Educational, Legal, Economical and Technological Development in India"

Oct. 08 – 09, 2015 at Madhav University, Pindwara, Sirohi, Rajasthan.

SR.NO	OCT – TITLE – AUTHORS (VOL-1, ISSUE- 3)	PAPER ID

Scanned with CamScanner

	Zha (86 – 90)	
16	Globalization and Our Heritage: A Review – L.N Sharma (91 – 95)	201510016
17	Collision of globalization on Indian economy- A broad idea towards LPG Model – Dr. Gaurav Khanna (96 – 101)	201510017
18	Prachin Bharat me Rajya Sanstha ka Uday evm Vikas – Narendra Saini (102 – 105)	201510018
19	Historical Analysis of Indian Culture of Globalisation – Ruchi Solanki (106 – 109)	201510019
20	Bazaronmukh Loktantra me Bhumandalikaran – Priyanka Udawat (110 – 113)	201510020
21	A Critical study on Global issues of missing Children – Hardik Raval (114 – 120)	201510021
22	Globalization of sports Management in Indian Context – Ankit Kharb (121- 126)	201510022
23	Social impact of Globalization on Developing Countries – Dr. Mukesh Kumar Mahawar (127-132)	201510023
24	Impact of Globalization on Business Environment of Developing Countries – Dr. Rajesh & Dipesh (128- 137)	201510024
25	An Article on Globalization Trends in Indian Market; Principles and Public Responsibilities – Nikita Deora (138- 141)	201510025
26	Globalization studies on Role of police under criminal Justice system – Meenu Dayma (142 – 148)	201510026
27	Bhartiya Polish Prashashan me vyapt Bhrastachar – Ghanshyam Deora (149 – 153)	201510027
28	Bhartiya sandarbh me Vaishvikaran or Arthvyavastha – Dr. Deepak Pancholi (154-156)	201510028
29	Vaishvikaran ka samaj par prabhav – Dr. Mahendra singh (157-158)	201510029

Scanned with CamScanner

INTERNATIONAL JOURNAL FOR INNOVATIVE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY FIELD ISSN – 2455-0620 Volume - 1, Issue - 3, Oct - 2015

प्राचीन भारत में राज्य संस्था का उदय एवं विकास

नरेन्द्र कुमार सैनी – असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं नागौर

Email : saini141180@rediffmail.com

सारांश –

प्राचीन भारत में प्रारंभ से ही सामाजिक व्यवस्था एवं सुरक्षा को बनाये रखने के लिए राज्य की आवश्यकता को समझा गया था। ऐसी अवधारणा भी कि यदि राज्य अपराधियों को दण्ड नहीं देता तो समाज में अव्यवस्था (मात्स्यन्याय) उत्पन्न हो जायेगी। राजदण्ड के डर से ही मनुष्य न्याय के मार्ग पर चलते हैं तथा न्याय ही उनका रक्षक है। महाभारत में कहा गया है कि "यदि दण्ड धारक राजा पृथ्वी पर न ह ो तो सबल निर्बल का भक्षण उसी प्रकार करेगें जिस प्रकार जल में बड़ी मछली छोटी मछली का भक्षण करती है। कौटिल्य ने भी इस मत की पुष्टि करते हुए इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं– "व्यवस्था के अभाव में मात्स्यन्याय की स्थिति उत्पन्न होती है– बलवान मनुष्य निर्बलों का दमन करते है।" इस प्रकार प्राचीन भारतीय मनीषियों ने सुशासन के लिए राज्य एवं राजा के अस्तित्व को अपरिहार्य माना है। इस प्रकार क्रमिक रूप से राज्य का प्रादुर्भाव एवं विकास निरन्तर होता रहा। प्रायः विभिन्न समय में विभिन्न विचारकों ने मत पर विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से प्रकाश डाला है। भारत के प्राचीन ग्रंथों में भी इस विषय पर उल्लेखनीय विवरण लिपिबद्ध किया गया है।

राज्य संस्था का प्रादुर्भाव एवं विकास किस प्रकार हुआ, प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेक स्थानों पर इस विषय का विषद रूप से निरूपण किया गया है। इस संबंध में सबसे प्राचीन निर्देष अथर्ववेद में मिलता है। इसमें मानव समाज और उसकी संस्थाओं के क्रमिक विकास का बड़े सुन्दर व स्पष्ट रूप से वर्णन है। पहले अराजक दषा थी, जिससे सब लोग भयभीत व आषंकित हो गये। महाभारत में भी इसी विचार को प्रगट किया गया है। इस स्थिति से भयभीत होकर सबसे पहले लोग परिवार के रूप में संगठित हुए। मानव समाज का सबसे पहला संगठन 'परिवार' ही था, जिसमें पति, पत्नि व सन्तान एक संगठित व मर्यादित जीवन व्यतीत करते थे। पारिवारिक संगठन के उपरान्त 'आहवनीय' दषा आई। आहवनीय शब्द का अभिप्राय एक ऐसे संगठन से है, जिसमें बुलाया जाय, आह्वान् किया जाए। संभवतः यह ग्राम के संगठन को सूचित करता है, जिसमें विविध कुलो के कुलमुखियों को आह्वान् द्वारा एकत्र किया जाता था। आहवनीय संस्था के बाद 'दक्षिणाग्नि' संस्था का विकास हुआ। दक्षिण का अर्थ चतुर है, और अग्नि का अग्रणी। निरूक्त वेदांग में अग्नि की निरूक्ति अग्रणी के रूप में की गई है। इस संस्था में संभवतः ग्राम के चतुर अग्रणी एकत्रित होते थे। यह ग्राम की अपेक्षा अधिक बड़े संगठन को सूचित करता है, जो जनपद या राष्ट्र का ऐसा संगठन था, जिसमें ग्रामों के योग्य नेता (ग्रामणी) एकत्र होते थे। इसके बाद सभा और समिति नामक संस्थाओं का विकास हुआ, जो जनपद की प्रमुख राजनीतिक संस्थाऐं थी। इनका वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। अथर्ववेद में इन्हें प्रजापति की दुहिताऐं कहा गया है। सभा ग्रामीण स्तर की सुसंगठित संस्था थी जिसमें ग्राम के मुखिया, विषिष्ट जन, वयोवृद्ध आदि इसके सदस्य होते थे जिन्हें 'सभेय' कहा जाता था। सभा समिति की अपेक्षा छोटी संस्था थी और कतिपय विषिष्ट व्यक्ति ही सम्मिलित होते थे। अथर्ववेद में इसे नरिष्ठा भी कहा गया है। राष्ट्र के प्रधान न्यायालय का कार्य भी सभा द्वारा ही किया जाता था। समिति एक केन्द्रिय संस्था थी। ऋग्वेद के एक मंत्र में राजा के समिति में शामिल होने के लिए जाने का निर्देष किया गया है। जन अथवा जनपद के सभी व्यस्क व्यक्ति इसके सदस्य होते थे। यह संपूर्ण प्रजा का प्रतिनिधित्व करती थी। सभी प्रमुख पदाधिकारी भी समिति की बैठक में उपस्थित होते थे। इसके अध्यक्ष को ईषान कहा जाता था। यह राजा पर नियंत्रण भी रखती थी कि राजा अपने कर्त्तव्यों का उचित प्रकार से पालन करे। ऋग्वेद के एक सुक्त में उल्लेख मिलता है कि सभा और समिति के सदस्य परस्पर सहयोग से कार्य करें। उनके मन एक हों, उनकी वाणी एक हों, उनका विचार–विमर्ष एक समान हो और वे एक ही नीति का निर्धारण करें। इस प्रकार अथर्ववेद के अनुसार राज्य संस्था क्रमिक विकास का परिणाम है। यह सिद्धान्त वर्तमान समय के राजनीतिषास्त्र के सिद्धान्तों से अनेक अंषों में समानता रखता है। इसे हम विकासवादी सिद्धान्त समझ सकते है।

अराजक दषा और राज्य की उत्पति – महाभारत के शांति पर्व में राज्यसंस्था के प्रादुर्भाव पर बड़े विस्तार से विचार किया गया है। इसके अनुसार राज्य संस्था से पूर्व 'अराजक' दषा थी और बाद में राज्य की उत्पति हुई। युधिष्ठर ने भीष्म से प्रष्न किया– 'यह जो सर्वत्र राजा शब्द प्रचलित है, इसकी उत्पति किस प्रकार हुई, यह मुझे बताईए। राजा के हाथ, पैर, मुख, मांस, श्वास, प्राण, बुद्धि आदि अन्य सबके तुल्य है। सबके समान उसे भी सुख–दुःख का भोग करना पड़ता है, जन्म मरण भी उसका दूसरों के सदृष ही होता है। फिर यह क्या बात है, जो वह विषिष्ट बुद्धि वाले और शूरवीर लोगों से परिपूर्ण इस पृथ्वी पर शासन करता है? यह क्या बात है जो उस अकेले के प्रसन्न होने पर सब प्रसन्न हो जाते हैं और उस अकेले के व्याकुल होने पर सब व्याकुल हो जाते है? इस संपूर्ण विषय पर मैं विस्तार के साथ जानना चाहता हूँ। भीष्म ने इस प्रष्न का उत्तर इस प्रकार दिया–

Scanned with CamScanner